National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2015; 1(1): 42-43
© 2015 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 04-09-2015
Accepted: 06-09-2015

डॉ रविश तमन्ना ताजिर
संस्कृत-पालि एवं प्राकृत विभाग,
रानीदुर्गावती विश्वविद्यालय,
जबलपुर (मध्य प्रदेश)

Correspondence:

डॉ रविश तमन्ना ताजिर
संस्कृत-पालि एवं प्राकृत विभाग,
रानीदुर्गावती विश्वविद्यालय,
जबलपुर (मध्य प्रदेश)

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में नारी का योगदान

डॉ. रविश तमन्ना ताजिर

समाज का उत्कर्ष, आर्थिक जीवन की सम्पन्नता और समुन्नति पर निर्भर करता है। व्यक्ति का भौतिक सुख उसके आर्थिक विकास से प्रभावित होता है। प्राचीनकाल में आर्थिक जीवन का मूल आधार कृषि तथा व्यापार रहा है इनमें व्यापार का मूल लक्ष्य समाज के लिए विभिन्न प्रकार की आवश्यक वस्तुओं को उत्पादक के पास से उपभोक्ता के पास पहुँचाना था। आर्थिक जीवन की प्रेरक वाणिज्यिक प्रवृतियाँ प्रत्येक युग में स्वभावतः उत्पन्न होती है एवं समाज को सुव्यवस्थित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस प्रकार इतिहास में मानव समाज की प्रगति का आंकलन तत्कालीन अर्थव्यवस्था को आधार बनाकर किया जाता है। महाभारत में कहा गया है कि अर्थ के द्वारा धर्म, काम एवं मोक्ष प्राप्त किए जा सकते हैं।[1] अर्थ के अभाव में लोक तथा परलोक दोनों ही कष्टदायक होते हैं।[2] याज्ञवल्क्य, कौटिल्य एवं मनु आदि स्मृतिकारों ने धर्मशास्त्र के व्यवहार में अर्थशास्त्र की भी प्रतिष्ठा की है।[3] आदि तीर्थंकर ने अपने पुत्र भरत को अर्थशास्त्र की शिक्षा दी थी।[4] इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में जीवन के चारों पुरुषार्थों में अर्थ का महत्व बना हुआ था। किसी भी राष्ट्र की सुव्यवस्था, उत्थान, उसके निवासियों का जीवन स्तर, सुख-शांति, वैभव आदि उस राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था पर आधारित होता था। प्रचीन भारतीय साहित्य का विश्लेषण करने पर विविध क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता का विवरण प्राप्त होता है। इनमें प्राचीन अर्थव्यवस्था के विकास में नारी के द्वारा पर्याप्त योगदान दिये जाने के साहित्यिक एवं पुराभिलेख प्रमाण उपलब्ध हैं।

प्राचीन काल में अर्थव्यवस्था भूमि पर आधारित थी। वैदिक साहित्य में कृषि को श्रेष्ठ कहा गया है। कृषि से वित्त, पशुओं से समृद्ध घर तथा पत्नी की प्राप्ति सम्भव कही गई है। ग्राम सत्रिवेश का स्वरूप निवासगृह के चारों ओर खेत तथा खेतों के चारों ओर गोचर भूमि थी। वैदिक युग से ही स्त्रियाँ कृषि कार्य में पुरूषों का सहयोग करती थी। पशु-पक्षियों से खेती की रखवाली करती थी। महर्षि मनु ने महिलाओं के अर्थोपार्जन हेतु कृषि के साथ-साथ शिल्पकार्य को प्रमुखता दी है। वे इस बात पर सहमत है कि विभिन्न प्रकार के शिल्पकार्यों से अर्जित किये गये धन पर महिलाओं पर अधिकार है तथा वे इसके माध्यम से अपना भरण-पोषण कर सकती हैं।[5] यहाँ मनु गृह उद्योगों की संकेत करते हुए दिखाई देते हैं। प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के पश्चात् उद्योगों की भूमिका अहम थी। ग्रामीण उद्योगों के तीन प्रमुख स्त्रोत माने गये हैं। वन, मवेषी तथा कृषि योग्य भूमि। वन सम्बंधी उद्योगों में लकड़हारे, तक्षण, इपुकार तथा ज्याकार आदि थे। मवेशियों से संबंधित व्यवसायों में दूध, माँस, चर्म, ऊनी वस्त्र आदि थे तथा कृषि से संबंधित व्यवसायों में तेल, कपास द्वारा सूती वस्त्रों के उद्योग आदि प्रमुख थे। इन सभी उद्योगों में स्त्रियों की भूमिका अहम् रही है। गृह उद्योगों में अन्न उत्पादन, मिटटी की वस्तुओं का निर्माण, सुगंधित द्रव्य उत्पादन तथा उपयोग की अन्य सामग्री का निर्माण आदि ऐसे मुख्य क्षेत्र रहे हैं जिनमें स्त्रियों की भागीदारी थी। मानव इतिहास के विभिन्न युगों में अन्न उत्पादन वस्त्र निर्माण शिल्प तथा विभिन्न उपकरण निर्माण में स्त्रियों का मुख्य योगदान रहा है। भूमि से संबंधित उद्योंगों में कपास से उत्पन्न उद्योग महत्वपूर्ण था। यह ऐसा उद्योग था जिसमें स्त्रियाँ घर में रहकर अपने अतिरिक्त समय में यह कार्य अच्छे से कर सकती थी। इसलिए यह उद्योग घर-घर में प्रचलित हो गया था। स्त्री बुनकारों को ‘ वायत्री‘ कहा जाता था। ब्राह्माण ग्रंथों से ज्ञात होता है कि ऊनी वस्त्र बनाने के लिए ऊर्णा(धागा) बनाने का मुख्य कार्य स्त्रियाँ ही करती थीं।[6] ऋग्वेद में ” सिरि” शब्द का प्रयोग विशषकर स्त्री बुनकरों के लिए किया गया है। अथर्ववेद में दो स्त्रियों को तंतु बुनते हुए और उनके साथ अन्य स्त्रियों को सूत को जमाते हुए वर्णित किया है।[7] स्त्रियाँ वस्त्रों को रंगने की क्रिया में निपुण थी। ऋग्वेद में कपड़ा रंगने वाली स्त्री को ‘ राजयज्ञी‘ कहा गया है। अवसथा में था और विभिन्न प्रकार के वस्त्र बनाये

जाते थे। कपास के प्राकृतिक वनों के अतिरिक्त उसकी कृषि भी होती थी। जिसका कार्य स्त्रियाँ सम्हालती थीं। जब वे कपास के खेतों की रखवाली करती थीं तो उसके साथ-साथ बारीक सूत कातने का कार्य भी करती थी।[10] यद्यपि कौटिल्य के समय कुछ बड़े उद्योगों के उदाहरण मिलते हैं किन्तु कुटीर उद्योग भी थे। कौटिल्य ने सूत काटने और बुनने के विभाग के अध्यक्ष को " सूत्राध्यक्ष" कहा है तथा सूत्र, वस्त्र, वस्त्र, रस्सियाँ आदि बनाने वाले शासकीय कारखानों का उल्लेख भी किया है। जिनमें उन स्त्री मजदूरों की नियुक्तियाँ की जाती थी जो निराश्रित, विधवा, अपंग, बालिका, संत अथवा अथवा देवदासी होती थीं। एक अभिलेख में " दास" बालिका द्वारा सूत कातने का उल्लेख है।[11]

उद्योगों के साथ ही स्त्रियों ने व्यापार एवं वाणिज्य में भी उसने अपनी पर्याप्त योग्यता सिद्ध कर दी थी। याज्ञवल्क्य एवं विष्णु स्मृतियाँ दर्शाती हैं कि वाणिज्य एवं उद्योग में निम्न वर्ग की स्त्रियों को अपने परिवार के व्यापार कार्य में क्रियात्मक भागीदारी थी और इतना ही नहीं पति की अनुपस्थिति में उनके स्थान पर वे ऋण अग्रिम लेती थी तथा उद्योग-धंधे से संबंधित बातचीत भी करती थी। महाराष्ट्र के रायगढ़ जिले के कुद्रगुहा से प्राप्त एक अभिलेख में नासिक के एक व्यापारी सार्थवाह पुशणक की पत्नी शिवदत्त के द्वारा दी गई भेंट चढ़ाने का वर्णन है जिससे सिद्ध होता है कि सार्थवाह पुशणक और उसकी पत्नी शिवदत्त व्यापार में अलग-अलग व्यस्त थे। मथुरा से प्राप्त तक अभिलेख में " धर्मसोमा" नामक सार्थवाहिनी का वर्णन है।[12] शिवदत्त भी सार्थवाहिनी थी जो अपने व्यापार का नेतृत्व कर रही थी। अतः यह स्वीकार करना होगा कि प्राचीन स्त्रियाँ केवल स्वतंत्र रूप से व्यापार नहीं करती थीं वरन् कारवाँ की साहसिक नेता भी होती थीं। भारत से विदेशों की निर्यात की जाने वाली सामग्री में सूत से निर्मित वस्त्र प्रमुख थे इसके साथ ही हाथी दाँत के उत्पादन, मोती, अँगूठियाँ तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों और शीशे की वस्तुओं के अन्य प्रमुख उद्योग थे जिन्होंने विदेश में अपने बाजार बना लिये थे। यद्यपि उन उद्योगों में स्त्रियों की भूमिका के स्पष्ट विवरण ज्ञात नहीं है। किन्तु अन्य वाणिज्यिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी से यह संभावना हो सकती है कि इन उद्योगों में भी उनकी भागीदारी रही होगी। स्त्रियाँ केवल वस्तुओं के उत्पादन, ढुलाई और वितरण तथा विक्रय में ही भाग नहीं लेती थी वरन व्यापार से संबंधित छोटे कार्यों में भी लग जाती थी।

उपरोक्त विवेचन से यह तथ्य स्वप्रमाणित है कि स्त्रियाँ किसी हद तक वाणिज्य व्यापार में सहयोग कर रही थीं। प्राचीनकाल में व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में स्त्रियों की संख्या भले ही कम रही हो किन्तु आर्थिक क्रियाकलापों में स्त्रियों पुरूषों के समकक्ष जिम्मेदारियों की निर्वहन करने में सक्षम थीं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी अगर देखें तो महिलाएँ जीवन के हर क्षेत्र में सहभागिता करने के साथ-साथ राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में योगदान देती हुई दिखाई देती है। पूर्व में कुछ क्षेत्रों तक सीमित रहने वाली महिलाओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रोजगार एवं अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में अपनी भागीदारी सुनिश्चित की है। आज शिक्षा, व्यापार, प्रशासन, स्वास्थ्य, राजनीति, बैंकिंग, साइंस, टेक्नोलाजी आदि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा जहाँ महिलाएँ अर्थोपार्जन न कर रही हो, इस प्रकार प्राचीनकाल से लेकर आज तक भारती अर्थव्यवस्था में नारी का योगदान प्रशंसनीय है।

सदंर्भ

1. महाभारत शांति पर्व, 8/17, 8/21
2. वही, 8/22
3. याज्ञवल्क्य, *2/21*, अर्थशास्त्र, 1/70/10-11
4. नारद, 1/1/89
5. आदिपुराणिक, 18/119
6. शतथथ ब्राह्मण, 12/7/2/11
7. अथर्ववेद, 10/10/7/42
8. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, प्राचीन भारत में नारी, पृ. 247
9. वही
10. महावग्ग जातक जिल्द 6, 546
11. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, प्राचीन भारत में नारी, पृ. 247
12. एपि. इण्डिया जिल्द लूडसर्जिस्ट, पृ. 22